"निवारक निरोध कानून एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता" (मौलिक अधिकार के संदर्भ में)

डॉ0 जे0पी0 गुप्ता
राजनीति विज्ञान विभाग
पी0सी0 साइंस कॉलेज
छपरा, सारण, बिहार।

स्वतंत्रता व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार हैं इसके अभाव में व्यक्ति के व्यक्तित्व का समूचित विकास नहीं हो सकता है स्वतंत्रता जनतंत्र की आधारशीला है। स्वतंत्रता के अभाव में जनतंत्र मात्र कल्पना की वस्तु बनकर रह जाएगी। अतः भारतीय संविधान निर्मात्रओं के द्वारा संविधान की प्रस्तावना में यह स्पष्ट कर दिया गया कि न्याय, स्वतंत्रता, भारतृत्व भाव विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता संविधान का मूल उद्देश्य होगा। प्रस्तावना के अंतगर्त निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये विशेषकर स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये संविधान के तृतीय अध्याय में मौलिक अधिकार के अंतर्गत 19 से 22 तक नागरिक स्वतंत्रताओं का विशेष उन्लेख किया गया है।

निवारक निरोध कानून कार्यपालिका को एक ऐसा अधिकार प्रदान करता है जिसके अंतर्गत वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को जिससे सामाजिक, सद्भावना एवं देश की प्रतिरक्षा पर आघात पहुँचाने की संभावना हो, उन्हें बिना मुकदमा चलाये ही गिरफ्तार किया जा सकता है, इस प्रकार यह व्यवस्था व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रतिकूल है। अतः इसका उपयोग काफी सुझबुझ के साथ किया जाना चाहिए, अन्यथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता अर्थहीन बन जाएगा।

निवारक निरोध कानून का प्रावधान भारतीय संविधान में किया गया है, लेकिन इसकी कही भी स्पष्ट व्याख्या नही की गयी है। ब्रिटिश उपनिवेश कालीन शासन के समय 1818 ई0 से लागू होकर यह प्रायः किसी न किसी रूप में निरंतर कायम रहा है। सर्वप्रथम 1818 ई0 में दी बंगाल स्टेट प्रिजनर्स रेग्यूलेशन 111 से इसे लागू किया गया। इसके बाद इसे मुम्बई और प्रेसिडेंसी तथा ब्रिटिश भारत के अन्य भाग में लागू किया गया।

इस दीर्घकालीन इतिहास के बावजूद इसकी कोई भी स्पष्ट परिभाषा नहीं दी गई है, और भारतीय संविधान में भी इसकी स्पष्ट परिभाषा नहीं दी गयी है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय में ए0के0 गोपालन बनाम मद्रास राज्य नामक मुकदमें में इसकी संक्षिप्त व्याख्या उपस्थित की। तत्कालीन मुख्य न्यायधीश न्यायमूर्ति कानिया ने यह स्पष्ट किया कि यह दंडित करने का नहीं बल्कि निवारण का एक साधन है[1]। इस मुकदमें में न्यायालय द्वारा जो निर्णय दिया गया। वह मूलतः आर0बी0हालिडेय एक्सजडिंग एवं लीभरसीज बनाम एन्ड्रसन नामक मुकदमे में ब्रिटिश न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय पर आधारित है[2]। न्यायमूर्ति कानिया ने इसे स्पष्ट करते हुए बतलाया कि

निवारक निरोध कानून का मतलब व्यक्ति को सजा देना नहीं, बल्कि उसे गलत कार्य करने के पहले ही रोक देना, इसका उद्देश्य हैं। इसके अंतर्गत न तो कोई अपराध साबित होता है और न हीं किसी बंदी बनाये गये व्यक्ति के विरूद्ध दोषारोपण किया जाता है। इस प्रकार के नजरबंदी का अर्थ केवल शंका होती है। यह औचित्य पूर्ण संभावना पर आधारित होता है इसमें न तो फौजदारी मुकदमे की तरह वारन्ट की आवश्यक्ता होती है और न व्यक्ति को दंडित करने की बात ही रहती है।[3] डी0डी0 वसु ने इसे स्पष्ट करते हुऐ लिखा है कि निवारक निरोध का अर्थ किसी व्यक्ति को कार्यपालिका द्वारा उसपर मुकदमा चलाये बिना ही बंदी बनाना होता है। जिसके विरूद्ध उसके पास कोई उचित या ठोस प्रमाण नहीं होता हैं। जब कार्यपालिका के पास मुकदमा चलाकर बंदी को सही ठहराने का कोई आधार नहीं होता है, तो निवारक निरोध कानून का सहारा लिया जाता हैं। इसका उपयोग व्यक्ति को कुछ गलत कार्य करने से पहले ही रोक लिया जाता है। इसका उपयोग कर व्यक्ति को सजा नहीं दिया जा सकता हैं ये बाते संविधान के तीसरे अनुसूची के 9 वे भाग के सूची1एवं 111 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है।[4]

निवारक निरोध का लक्ष्य किसी व्यक्ति को कोई कार्य किसी खास ठंग से करने से रोकना ही नहीं होता है बल्कि किसी खास उद्देश्य की प्राप्ति से उसे वंचित करना भी होता है। बंदी बनाये गये व्यक्ति के विरूद्ध न तो किसी प्रकार का दोष साबित हो पाता है और नहीं उसके विरूद्ध आरोप पत्र ही तैयार किया जाता है। इसका एक मात्र आधार शंका है न कि फौजदारी मान्यता या दंडित करने का प्रावधान। इसे केवल बौद्धिक आधार पर दोष सिद्ध किया जा सकता है।[5] निवारक निरोध कानून मूलतः कार्यपालिका की संतुष्टि पर निर्भर करता है जिसमें औचित्यपूर्ण मान्यता के आधार पर निर्णय लिया जाता हैं, कि अतीत मे उसने जो व्यवहार किया है उसी तरह का व्यवहार पुनः किये जाने की संभावना है, जबकि फौजदारी कानून के अंतर्गत किसी व्यक्ति को बंदी बनाया जाता है तो इसका अर्थ है कि उस अपराधी व्यक्ति के द्वारा अपराध किया जा चुका है और अपराध करने पर दंडित करने के लिये वैधिक सुनवाई आवश्यक है।[6] इस तरह सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दो प्रकार के बंदी व्यवस्था में मौलिक अंतर है। दंड के लिये बंदी बनाये गये व्यक्ति को हिरासत में ले लिया जाता है जब मुकदमें की सुनवाई के बाद किये गये अपराध के लिये उसके विरूद्ध आरोप सिद्ध हो जाता है और तब उसे अपने बचाव का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है जबकि निवारक निरोध कानून के अंतर्गत किसी व्यक्ति को केवल इस बात की संभावना पर ही हिरासत में ले लिया जाता है कि वह कोई ऐसा कार्य कर सकता है जो सामाजिक हित के लिये घातक सिद्ध हो, इस तरह के निवारक निरोध कानून के अंतर्गत किसी व्यक्ति को मात्र शंका के आधार पर हिरासत में ले लिया जाता है और कार्यपालका को बंदी के विरूद्ध में अपना पक्ष प्रस्तुत करने का असीमित अवसर प्राप्त हो जाता है।[7] दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि इसके अंतर्गत जब किसी व्यक्ति को बंदी बनाया जाता है तो इसका अर्थ यह है कि उसके समक्ष न्यायिक पक्षकारी के द्वारा उपलब्ध वैध साक्ष्यों के आधार पर किसी ऐसे कार्य के लिये दोषी पाया गया है जो कानून के नाम दंडनीय

अपराध हैं जबकि निवारक निरोध के अंतगर्त यदि कार्यपालिका इस बात से संतुष्ट हो जाती है कि कोई व्यक्ति ऐसा कार्य कर सकता है जो राष्ट्रीय सुरक्षा और सामाजिक सौहार्द्ध के लिये घातक सिद्व हो तो उसे बंदी बनाया जा सकता है।

अवरोधक नजरबंदी मूलतः चार सिद्धांतो पर आधारित हैः– प्रथम– इस कानून को हमेशा समाज और आम लोगों के हित में होना चाहिए यदि सामाजिक हित अन्य लोगों के हित के अनुकूल नहीं है तो उसे पक्षपातपूर्ण और शोषण के साधन के रूप में देखा जाएगा।

द्वितीय – जब युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी है तो ऐसी स्थिति में संकट से मुकाबला करने के लिये राजद्रोहियों के विरूद्ध इसका उपयोग किया जा सकता है।

तृतीय – यदि युवा व्यक्ति को हिरासत में रखने के कारण बच्चे के लालन–पालन में व्यवधान उपस्थित होता है तो उस बच्चे को सुरक्षित करने के लिये बड़े बुजुर्गो को बंदी से (नजरबंदी) से मुक्त कर दिया जाता है।

चतुर्थ – अवरोधक नजरबंदी तभी लागू हो सकता है जब इस तरह के अन्य कानून वहाँ विशेष परिस्थिति से निपटने के लिये पहले से उपलब्ध नहीं हो।[8]

संदर्भ विवरणिकाः

संविधान में विधानपालिका को निवारक निरोध संबंधी उपबंध कराने वाली विधि बनाने को प्राधिकृत किया गया है। यह निवारक निरोध राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था बनाये रखने, समुदाय के लिए आवश्यक सेवा या रक्षा विदेश कार्य, भारत की सुरक्षा संबंधी कारणो से ही हो सकता हैं।–

अतः विधानपालिका यह अधिनियमित कर सकती है कि किसी व्यक्ति को उपर्युक्त कारणो के बिना विचारण कारावासित किया जा सकता है और ऐसी विधियों के विरूद्ध व्यक्ति को दौहिक स्वतंत्रता का अधिकार नहीं होगा। संविधान के उपर्युक्त शक्तियों के दुरूपयोग के विरूद्ध कुछ रक्षा के उपाये बताये है। संविधान के अनु0 22 (4), (7) में यही रक्षा के उपाय मनमाने निरोधन के विरूद्ध मूल अधिकार के रूप में है, जो निम्न हैः–

1 सरकार ऐसे व्यक्ति को केवल तीन माह तक ही अभिरक्षा में निरोधन कर सकती है यदि वह गिरफ्तार व्यक्ति को तीन माह से अधिक समय तक के लिए निरोधन करना चाहती है तो सलाहकार बोर्ड, सरकार और अभियुक्त के द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज का परीक्षण करेगा तथा मूल्यांकन करेगा कि निरोधन का आधार न्यायोचित है कि नहीं।

2 इस प्रकार निरूद्ध व्यक्ति को यथाशीघ्र निरोध के आधार पर संशोधित किये जाएगें किन्तु ये तथ्य प्रकट नहीं किये जाएंगे जिन्हें प्रकट करना निरोधक पदाधिकारी लोकहित के विरूद्ध समझता हैं।

3 गिरफ्तार व्यक्ति को निरोधन आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन करने के शीघ्रताशीघ्र अवसर प्रदान किये जाऐंगे।

इस तरह कोई भी ऐसा कानून जो अनु0–22 के उपर्युक्त अघोषित शर्त्तो का उल्लंघन करती है उसे अवैध की जा सकती है। न्यायालय द्वारा इस प्रकार अविधिमान्य किया जा सकेगा, तथा निरूद्ध व्यक्ति तुरंत मुक्त हो जाऐगा।[9]

न्यायमुर्ति मुखर्जी ने यहाँ तक कहा था कि विश्व के किसी भी संविधान में जिसकी जानकारी मुझे है, इस तरह के प्रावधान नहीं अपनाये गये है। यह निश्चय ही दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति है क्योंकि इसके द्वारा लोगों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगता है।[10]

मुख्य न्यायधीश पतांजलि शास्त्री ने भी इस प्रकार के विचार रामकृष्ण भारद्वाज बनाम चेन्नई राज्य नामक मुकदमे में व्यक्त किया था। उन्होने यह स्पष्ट किया कि निवारक निरोध कानून व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर गहरा आघात है। चूँकि लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये संविधान के अंतर्गत बहुत सीमित व्यवस्था की गई है। इन सीमित व्यवस्थाओ का समूचित अनुपालन हों यह देखना न्यायपालिका का दायित्व है।[11]

भारतीय संविधान निर्माता इस बात से पूर्णतः अवगत थे कि स्वतंत्रता व्यक्ति के जीवन का सर्वाधिक महत्पूर्ण पहलू है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का मूल आधार स्वतंत्रता की प्राप्ति थी। अतः संविधान निर्माता अनुच्छेद 15 के अतर्गत सामान्य रूप से भारतीय नागरिकों को स्वंतत्रता का अधिकार प्रदान किया है। वही संविधान के अनुच्छेद 20,21 और 22 के अंतगर्त व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनु0 20 के अंतर्गत अपराध के लिये दोष सिद्धि के संदर्भ के स्पष्ट व्याख्या की गई है। इस अनु0 में निम्न प्रावधान का उल्लेख हैः–

1 किसी व्यक्ति को तभी दंडित किया जा सकता है जब उसने उस समय प्रचलित किसी कानून का स्पष्ट उल्लंघन किया हो अर्थात भूतलक्षी दंडित विधान को प्रतिसिद्ध किया गया है। इसी अनु0 के उपभाग "2" के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिये एक से अधिक बार दंडित नहीं किया जा सकता हैं जबकि अनु0 20 की उपधारा "3" में यह स्पष्ट किया गया कि किसी भी व्यक्ति को अपने ही विरूद्ध गवाह बनाने के लिये मजबूर नहीं किया जा सकता। संविधान के इसी अनु0 के अंतर्गत यह भी स्पष्ट किया गया है किसी कानून के अंतर्गत निर्धारित दंड से अधिक दंड नहीं दिया जा सकता है।

इस तरह संविधान का यह अनुच्छेद विधायिका या संसद पर यह प्रतिबंध स्थापित करता है कि वह किसी नियम का निर्माण कर उसे भूतलक्षी प्रभाव से प्रभावित कर किसी व्यक्ति को दंडित नहीं कर सकता, इस प्रकर व्यक्तिगत स्वंतत्रता के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रावधान है। पंडित ठाकुर दास भार्गव ने स्पष्ट किया कि हमारा मूल उद्देश्य है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना है और विधायिका एवं न्यायपालिका ही हमारी स्वतंत्रता की रक्षा

कर सकती है, लेकिन यदि विधायिका दलगत भावना एवं कभी भय के कारण भवावेश में बह जाये तो न्यायपालिका ही हमें कार्यपालिका एवं विधायिका की निरंकुशता से रक्षा कर सकती है।

न्यायमूर्ति मुखर्जी ने संविधान के अनु0 "21" अंतर्गत प्रदत्त अधिकार के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा था कि यह मौलिक अधिकार केवल विधायिका पर प्रतिबंध नहीं लगाता बल्कि कार्यपालिका पर भी प्रतिबंध लगाता है और कार्यपालिका द्वारा किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आघात बिना विधि के अनुपालन किया जाता है तो वैसा करने से यह कार्यपालिका को प्रतिबंधित कर सकती है।

संविधान के अनुच्छेद "21" के द्वारा जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण की व्याख्या की गई हैं यह लोगों के जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता संबंधी निरंकुश अधिकार, लोगो को प्रदान नहीं करता है। यह केवल कार्यपालिका या विधायिका के मनमाने व्यवहार पर प्रतिबंध स्थापित करता है। संविधान के अनु0 "19" की उपधारा 21–(6) द्वारा किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता संबंधी अधिकार पर प्रतिबंध लगाये गये है, लेकिन संविधान के अनु0 21 और 22 राज्य की कार्यपालिका एवं विधानपालिका पर प्रतिबंध लगाता है।

1950 में ए.के.गोपाल बनाम मद्रास राज्य नामक मुकदमें में न्यायमूर्ति महाजन ने यह स्पष्ट किया कि निवारक निरोध कानून जनतांत्रिक मान्यताओं के अनुकूल नहीं है तथा यह विश्व के किसी भी संविधान में विधमान नहीं है, लेकिन इसका समावेश भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों से संबंधित अध्यायों में किया गया है जो निश्चित ही विशेष परिस्थिति उत्पन्न करती है।

संविधान के अनु0 22 के द्वारा तीन प्रकार के अधिकारो की गारंटी दी गई है।

प्रथम – हिरासत में लिये गये किसी भी व्यक्ति को उसे बंदी बनाये जाने के कारण जानने का अधिकार है।

द्वितीय – उस आदमी को अपनी इच्छानुसार किसी वकील से परामर्श करने और प्रतिरक्षा करने के अधिकारो से वंचित नहीं किया जा सकता है।

तृतीय– प्रत्येक व्यक्ति जिन्हें गिरफ्तार किया गया है और बंदी बनाया गया है गिरफ्तार के स्थान से दंडाधिकारी के न्यायलय तक यात्रा के समय को छोड़कार ऐसे गिरफ्तारी से 24 घंटे की अवधि में निकत्तम दंडिधिकारी के सम्मुख पेश किया जाएगा और ऐसे किसी या व्यक्ति को दंडाधिकारी के प्रावधिकार के बिना उक्त अवधि के बाद अभिरक्षा में बंदी में नहीं रखा जाएगा।

लेकिन इस प्रावधान के दो अपवाद हैः–

प्रथम– शत्रु राष्ट्र के नागरिको को यह अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

द्वितीय– किसी ऐसे व्यक्ति को भी यह छूट प्राप्त नहीं होगी, जिसे निवारक निरोध कानून के अंतर्गत बंदी बनाया गया है।

भारतीय संविधान के अंतर्गत यह प्रावधान वास्तव में गहन विचार–विमर्श के बाद तथा दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं के मध्य समन्वय के परिणाम माना जा सकता है। एक तरफ देश की आजादी मिली थी तो दूसरी तरफ लोगों की व्यक्गित स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी। व्यक्गित स्वतंत्रता और देश की स्वतंत्रता के मध्य किसे श्रेष्ठता प्रदान की जाए और दोनो के मध्य किस प्रकार समन्वय स्थापित किया जाए, या एक अहम् प्रश्न बना हुआ था क्योंकि स्वतंत्र भारत में विघटनकारी शक्तियाँ सक्रिय थी और देश की स्वंतत्रता पर खतरा उपस्थित होने की संभवना थी, अतः संविधान निर्मताओं ने व्यक्गित स्वतंत्रता एवं राष्ट्र की स्वतंत्रता के मध्य समन्वय लाने के कारण इस प्राकर के प्रावधान संविधान में किया और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबंध लगाये ताकि राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित हो सके।

व्यक्ति और राज्य के बीच परास्परिक संबंध की समस्या एक प्राचीनतम समस्या रही है। वर्तमान जनतांत्रिक ब्यवस्था के अंतर्गत यह समस्या और अधिक जटिल बन गई है क्योंकि अब एक आम धारणा विकसित होती जा रही है कि राष्ट्रीय शक्ति पर ऐसे नियंत्रण स्थपित किये जाये, जिससे व्यक्ति के अधिकारो के विरूद्ध राज्य द्वारा अपनी शक्ति या सत्ता का दुरूपयोग न किया जाए। राजकीय शक्ति पर ऐसे प्रतिबंध भारतीय संविधान के अंतर्गत मौलिक अधिकार के द्वारा ही लगाया जाना उचित समझा गया और ऐसी व्यवस्था संविधान में की गयी। इस तरह व्यक्तिगत स्वतंत्रता एंव राज्य की अमर्यादित सत्ता को नियंत्रित कर समन्वय स्थापित करने का प्रयास भारतीय संविधान के द्वारा किया गया है।

संदर्भ विवरणिका

1 ए.के. गोपाल बनाम मद्रास राज्य सरकार (1950) ए. आई. आ. पृ0–27।

2 आर. भी. हालिडे एक्सजडिंग (1917) ए.सी.आर–260 लीभरसीज बनाम एन्ड्रसन (1942) ए.सी.आर–260

3 ए.के गोपालन बनाम मद्रास राज्य सरकार (1950) ए.आई. आर पृ0–27।

4. डी.डी.बसु सोर्टर कांस्टिच्यूशन ऑफ इंडिया (न्यूदिल्ली 1981) पृ0– 447।

5. ए.डी.एम. जबलपुर बनाम शुक्ला ए.आई.आर. पृ0–19, 1976 ।

6. फ्रांसीसी कोरलाई मुलीन बनाम प्रशासक, युनियन ट्रेटरी ऑफ दिल्ली (ए.आई.आर.–1981) पृ0746।

7. पी.एल.धर. "अवरोधक नजरबंदी" भारतीय संविधान (नई दिल्ली) 1986पृ0–19।

8. कृष्णा बनाम मद्रास राज्य– 1951 सी.आर. पृष्ठ संख्या– 62।

9 तारोपद बनाम पश्चिम बंगाल सरकार–1951 एस.सीआर. पृष्ट सं0–212

10. ए. के. गोपालन बनाम मद्रास सरकार– 1950 एस.सी.जे.150 पृष्ट– 263

11. एस.सी.आर0 1953 पृष्ठ – 708।